श्रीकलावती जैन

जैनागम और नारी

आगमसाहित्य में नारी का महत्त्व—समाजरचना में नारी और पुरुष दोनों का समान महत्त्व रहा है. समाज का अर्थ है स्त्री और पुरुष. उसका अर्थ न केवल पुरुष है और न केवल स्त्री. समाज के विकास में दोनों का पृथक् अस्तित्व, कोई मूल्य नहीं रखता. दोनों विश्वरथ के दो चक्र हैं. उसमें न कोई छोटा न कोई बड़ा. दोनों की समानता ही रथ की गति-प्रगति है. दोनों ही समाज या विश्व-व्यवस्था के सहज-स्वाभाविक, अनिवार्य एवं अभिन्न अंग हैं, दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं, सहायक हैं, सहयोगी हैं. समाज, राष्ट्र एवं विश्व के विकास में, विश्व-इतिहास को नई गति देने में पुरुष के साथ स्त्री का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है. इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें, आपको स्वर्णाक्षरों में अंकित मिलेगा कि नारी ने हर युग में विश्व को, मानव जाति को नई ज्योति, नई प्रेरणा एवं नई चेतना दी है. इतिहास नारी के उज्ज्वल आदर्श एवं तप-त्याग-निष्ठ जीवन का साक्षी है.

श्रमण-संस्कृति में नारी का महत्त्व—श्रमण-संस्कृति समता और साम्यभाव की संस्कृति है. वह आत्मविश्वास एवं गुण-विकास को महत्व देती है. श्रमण संस्कृति के महान् उन्नायकों ने आत्म-साधना के क्षेत्र में जाति-भेद, वर्ग-भेद, और रंग-भेद आदि को कभी स्वीकार नहीं किया. श्रमण भगवान् महावीर का यह वज्र आघोष रहा है कि साधना करने का, आत्म-विकास करने का, मुक्ति प्राप्त करने का सबको समान रूप से अधिकार है. आत्मस्वरूप की दृष्टि से विश्व की समस्त आत्माएँ एक-सी हैं. जो अनन्त गुण युक्त आत्म-ज्योति पुरुष में है, वैसी ही आत्म-ज्योति नारी में है. अतः साधना के क्षेत्र में नर-नारी के भेद का कोई मूल्य नहीं है. मूल्य है राग-द्वेष पर, काम-क्रोध पर, कषायों की आग पर विजय पाने का. जो व्यक्ति-भले ही स्त्री हो या पुरुष, राग द्वेष क्षय कर देता है, वही महान् है, विश्व-वंद्य है.

उस युग में जब कि वैदिकपरम्परा का जोर था और उसमें स्त्री एवं शूद्र को धर्म-साधना करने का, वेद पढ़ने एवं सुनने का कोई अधिकार नहीं था, श्रमण भगवान् महावीर ने नारी को अपने संघ में पुरुष के समान स्थान एवं समान अधिकार दिया और निर्भयता पूर्वक यह घोषित किया कि नारी भी साधना के द्वारा अपने जीवन का विकास कर सकती है. आत्मा के परमलक्ष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकती है. अनन्त शान्ति का साक्षात्कार कर सकती है. उस युग में भगवान् महावीर की यह एक महान् क्रान्ति थी, जिसके लिये उन्हें हजारों-हजार गालियाँ दी गईं, उनका प्रबल विरोध भी किया गया. परन्तु वह सत्य एवं अहिंसा का अधिदेवता इससे डरा नहीं, विकंपित नहीं हुआ. वह अविचल भाव से सत्य का नाद गुँजाता रहा और विना किसी भेद-भाव के सबको सत्य का, साधना का पथ दिखाता रहा. उसकी चरणसेवा में पुरुष आया तो उसे भी साधना का पथ दिखाया और जब नारी उसकी सेवा में पहुँची तो उसे

भी साधना की उसी ज्योति का दर्शन कराया. उसकी साधना का द्वार सब के लिये खुला था. उसने स्त्री का भी स्वागत किया और पुरुष का भी.

तथागत बुद्ध भी भगवान् महावीर के समकालीन महापुरुष थे. जाति-भेद की दीवार को तोड़ने एवं हिंसक यज्ञों का विरोध करने में भगवान् बुद्ध ने साहस का परिचय दिया. उनके मन में भी नारी के प्रति सम्मान और आदर के भाव थे. उस युग की गणिकाओं के जीवन को बदलने के लिये उन्होंने भी महत्वपूर्ण काम किया. परन्तु उनके जीवन में यह एक महान् कमजोरी थी कि वे नारी को अपने भिक्षुसंघ में स्थान नहीं दे सके. जब कभी उनके प्रमुख शिष्य आनन्द ने उनके सामने नारी को श्रमणदीक्षा देने का प्रश्न रखा, तब उन्होंने उसे टालने में ही अपना हित समझा और वे अन्त तक उसे टालते ही रहे. अन्त में आनन्द एक बहिन को—जो भगवान् बुद्ध की परम शिष्या एवं अनन्य भक्ता थी—ले आया और भगवान् बुद्ध से निवेदन किया कि यह बहिन आपके श्रमण-संघ में प्रविष्ट होने के लिये सब तरह योग्य है और आपके उपदेश को जीवन में साकार रूप देने के लिये सर्वथा उपयुक्त है, ऐसा मैंने देख लिया है. अतः इसे आप श्रमण-साधना का, भिक्षुणी बनने का उपदेश दें. भगवान् बुद्ध इसके लिये तैयार नहीं थे. परन्तु वे आनन्द के आग्रह को टाल न सके. उन्होंने आनन्द से इतना ही कहा : 'हे आनन्द ! मैं यह कार्य केवल तुम्हारे प्रेम एवं आग्रह को रखने के लिये कर रहा हूँ और तुम्हारे स्नेह के कारण ही यह खतरा उठा रहा हूँ. मैं इसे भिक्षुणी बना रहा हूँ.' उन्होंने आनन्द के आग्रह को रखने के लिये भिक्षुणी-संघ की स्थापना की. परन्तु उनके साथ यह स्पष्ट कर दिया कि—'हे आनन्द ! मेरा यह शासन एक हजार वर्ष चलता, वह अब पांच-सौ वर्ष ही चलेगा.'

इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तथागत बुद्ध के मन में भय या डर था. उन्हें व्यावहारिक भूमिका छू गई थी. परन्तु भगवान् महावीर व्यावहारिक भूमिका से ऊपर उठ चुके थे. उनके मन में, उनके जीवन के किसी भी कोने में भय एवं डर को कोई स्थान नहीं था. इसलिए साधना के क्षेत्र में उन्होंने स्त्री और पुरुष में तत्त्वतः कोई भेद नहीं रखा. चतुर्विध-संघ में श्रमणियों-साध्वियों को श्रमण-साधु के बराबर स्थान दिया और श्राविकाओं को श्रावक के समान. उन्होंने साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका चारों को तीर्थ कहा और चारों को मोक्ष-मार्ग का पथिक बताया.

आगमसाहित्य में नारी का स्थान—भगवान् महावीर की अभेद विचारधारा का ही यह प्रतिफल है कि उनके श्रमणसंघ में श्रमणों की अपेक्षा श्रमणियों की संख्या अधिक रही है और उपासक वर्ग में भी श्रमणोपासकों से श्रमणोपासिकाएँ संख्या में द्विगुणाधिक थी. श्रमण १४००० थे, तो श्रमणियाँ ३६००० थीं, और आज भी साधुओं से साध्वियों की और श्रावकों से श्राविकाओं की संख्या अधिक है. यह संख्या इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि भगवान् महावीर के शासन में नारी का जीवन विकसित एवं प्रगतिशील रहा है.

आगम-साहित्य का अनुशीलन-परिशीलन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अगाम-साहित्य में नारी के ज्योतिर्मय जीवन की गौरवगाथा स्वर्णाक्षरों में अंकित है. भगवतीसूत्र में कौशाम्बी के शतानीक राजा की बहिन जयन्ती के चिन्तनशील उर्वर मस्तिष्क एवं तर्कशक्ति का परिचय मिलता है. वह निर्भय एवं निर्द्वन्द्व भाव से भगवान् महावीर से प्रश्न पूछती है, और भगवान् महावीर उसके तर्कों का समाधान करते हैं. इस विचार-चर्चा में उसकी सूक्ष्म तर्कशक्ति का परिचय मिलता है और इससे यह परिज्ञात होता है कि इसके पीछे उसका विशाल अध्ययन, गहन चिन्तन एवं सतत स्वाध्याय साधना का बल था.

दशवैकालिक-सूत्र में राजमती और रथनेमि का संवाद मिलता है. राजमती जब भगवान् नेमिनाथ के दर्शनार्थ गिरनार पर्वत पर जा रही थी, तब मार्ग में वर्षा से भीगे हुए वस्त्रों को सुखाने के लिये वह एक गुफा में प्रविष्ट हुई वहाँ भगवान् नेमिनाथ के लघु भ्राता रहनेमि ध्यान साधना में संलग्न थे राजमती के सौन्दर्य को देखकर उनका मन विचलित हो उठा और वह साधना एवं संयम के बांध को तोड़ कर भागने लगा. रहनेमि ने राजमती के सामने भोग भोगने का प्रस्ताव रखा. उस समय संयमनिष्ठा राजमती ने पथ-भ्रष्ट एवं वासना की ओर जाते हुए रहनेमि को साधना-पथ पर लगाने का प्रयत्न

किया और इसमें वह पूर्णतया सफल हुई. आगम में उपलब्ध संवाद से उसकी निर्भयता, उसके संयम उसके ज्ञान और उसकी समझाने की अद्भुत शक्ति का बोध होता है.

बाहुबली के अभिमान को चूर-चूर करने वाली भगवान् ऋषभदेव की दो पुत्रियाँ—ब्राह्मी और सुन्दरी ही थीं, जो उनकी बहिनें थीं. उन साध्वियों द्वारा जगाई गई चेतना, और दिया गया उपदेश एक राजस्थानी कवि के शब्दों में आज भी जन-जन की जिह्वा पर बसा हुआ है और अभिमान एवं अहंभाव के नशे से मदोन्मत्त बने मानव को निरहंकारी बनने की प्रेरणा देता है.

'वीरा म्हारा गज थकी उतरो ,
गज चढ़्यां केवल न होसी रे !'

उत्तराध्ययन-सूत्र के चौदहवें अध्ययन में भृगु पुरोहित का वर्णन आता है. भृगु पुरोहित अपने दो पुत्रों के वैराग्य से प्रभावित होकर अपनी पत्नी के साथ दीक्षा लेने को तैयार हुआ, तो राजा ने उसके धन वैभव को अपने भंडार में लाकर जमा करने की आज्ञा दी. जब राजा की पत्नी महारानी कमलावती को इसका संकेत मिला तो उसने राजदरबार में उपस्थित होकर राजा को उपदेश दिया, उसकी धन-लिप्सा को दूर किया, मोहनिद्रा को भंग किया, और उसे प्रतिबोध देकर अपने साधनापथ का पथिक बनाया.

अन्तकृत्दशांग सूत्र में मगध के सम्राट् श्रेणिक की महाकाली, सुकाली आदि दस महारानियों का वर्णन है, जिन्होंने श्रमण भगवान् महावीर के उपदेश से प्रतिबोध पाकर साधना-पथ स्वीकार किया. जो महारानी राजप्रासादों में, रहकर विभिन्न प्रकार के रत्नों के हार एवं आभूषणों से अपने शरीर को विभूषित करती थीं, वे जब साधना के पथ पर गतिशील हुई तो कनकावली, रत्नावली आदि तपश्चर्या के हारों को धारण करके अपनी आत्म-ज्योति को चमकाने लगीं.

इस तरह आगम-साहित्य के अनेक पृष्ठों पर नारी के तप, त्याग एवं संयमनिष्ठा आदर्श तथा ज्योतिर्मय जीवन की कहानी स्वर्णाक्षरों में अंकित है. इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्रमण-संस्कृति में, आगमसाहित्य में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है. नारी का यह महत्त्व उसके तप-त्याग, सहिष्णुता, दया-करुणा, वात्सल्य आदि गुणों के कारण रहा है. भगवान् महावीर ने ही नहीं, वर्तमान युग में महात्मा गांधी ने भी नारी की महत्ता को स्वीकार किया है. बापू ने अंग्रेजी के 'हरिजन' पत्र में नारी की परिभाषा देते हुए उसे अहिंसा की साकार मूर्ति कहा है.—Woman is incarnation of Ahimsa.

जैनाचार्यों ने भी नारी की गौरवगाथा गाई है. आचार्य जिनसेन के साहित्य में नारी के आदर्श जीवन का उज्ज्वल चित्रण है. एक जगह आचार्य ने लिखा है :

"गुणवती नारी संसार में सर्व श्रेष्ठ पद को प्राप्त करती है. उसका नाम अग्रिम पंक्ति में सबसे ऊपर अंकित रहता है."

अस्तु, नारी का समाज के विकास में युग-युगान्तर से सहयोग रहा है. उसकी तेजस्विता, सहिष्णुता, श्रद्धा-निष्ठा एवं तप-साधना सदा अद्भुत रही है. देश, समाज एवं धर्म की रक्षा के लिये वह अपना सर्वस्व न्योछावर करने में कभी पीछे नहीं रही. अतः नारी को नगण्य समझना और उसके महत्त्व को अस्वीकार करना, सत्य को झुठलाना है. नारी श्रद्धा-संयम, समता-ममता एवं सहिष्णुता की सजीव मूर्ति है, गृहदेवी है और प्रतिपल विश्ववाटिका को अपने वात्सल्य-पीयूष से सिंचित करती रहती है. उसकी स्नेह-धारा युग-युगान्तर से प्रवहमान रही है और-आज भी सतत गति से प्रवहमान है. वह क्या है और उसका क्या कर्तव्य है, इस सम्बन्ध में महाकवि जयशंकरप्रसाद का यह पद्य ही पर्याप्त है :

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग-पग पल में ,
पीयूष स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में !'